राजस्थान का जैन संस्कृत साहित्य

☐ डॉ० प्रेमचन्द रांवका, प्राध्यापक, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, मनोहरपुर (जयपुर)

भारतीय इतिहास में राजस्थान का गौरवपूर्ण स्थान है। यहाँ की धरती वीर-प्रसिवनी होने साथ-साथ मनीषी साहित्यकारों एवं सस्कृत भाषा के उद्भट विद्वानों की कर्मस्थली भी रही है। एक ओर यहाँ की कर्मभूमि का कण-कण वीरता एवं शौर्य के लिए प्रसिद्ध रहा है तो दूसरी ओर भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के गौरव-स्थल भी यहाँ पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। यहाँ के वीर योद्धाओं ने अपनी-अपनी जननी-जन्मभूमि की रक्षार्थ हँसते-हँसते प्राणों को न्यौछावर किया तो यहाँ होने वाले आचार्यों, ऋषि-मुनियों-भट्टारकों, साधु-सन्तों एवं विद्वान् मनीषियों ने साहित्य की महती सेवा की और अपनी कृतियों द्वारा प्रजा में राष्ट्रभक्ति, नैतिकता एवं सांस्कृतिक जागरूकता का प्रचार किया। यही कारण है कि प्रारम्भ से ही राजस्थान प्रजा एवं शासन के अपूर्व सहयोग से संस्कृति, साहित्य, कला एवं शौर्य का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ के रणथम्भौर, कुम्भलगढ़, चितौड़, भरतपुर, अजमेर, मण्डोर, और हल्दीघाटी जैसे स्थान यदि वीरता, त्याग एवं देशभक्ति के प्रतीक हैं, तो जयपुर, जैसलमेर, बीकानेर, नागौर, अजमेर, आमेर, उदयपुर, डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट आदि कितने ही नगर ग्रन्थकारों एवं साहित्योपासकों के पवित्र स्थल हैं, जिन्होंने अनेक संकटों एवं झंझावातों के मध्य भी साहित्य की धरोहर सुरक्षित रखा है। वस्तुतः शक्ति एवं भक्ति का अपूर्व सामंजस्य इस राजस्थान प्रदेश की अपनी विशेषता है।

राजस्थान की इस पावन भूमि पर अनेकों सन्त, मनीषी विद्वान् हुए, जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा भारतीय वाङ्मय के भण्डार को परिपूरित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जैन-मुनियों एवं विद्वानों का राजस्थान प्रान्त सैकड़ों वर्षों तक केन्द्र रहा है। डूंगरपुर, सागवाड़ा, नागौर, अजमेर, बीकानेर, जैसलमेर, चित्तौड़ आदि इन सन्त विद्वानों के मुख्य स्थान थे, जहाँ से वे राजस्थान में ही नहीं भारत के अन्य प्रदेशों में विहार करते तथा अपने ज्ञान एवं आत्म-साधना के साथ-साथ जनसाधारण के हितार्थ उपदेश देते थे। ये सन्त विद्वान विविध भाषाओं के ज्ञाता थे। भाषाविशेष से कभी मोह नहीं रखते थे। जनसामान्य को रुचि एवं आवश्यकतानुसार वे संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं में साहित्य संरचना करते। आत्मोन्नति के साथ जनकल्याण इनके जीवन का उद्देश्य होता था। राजस्थान में जैन साहित्य के विश्रुत गवेषी विद्वान् डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल के शब्दों में वेद, स्मृति, उपनिषद्, पुराण, रामायण एवं महाभारत काल के ऋषियों एवं सन्तों के पश्चात् भारतीय साहित्य की जितनी सेवा एवं उसकी सुरक्षा जैन सन्तों ने की उतनी अधिक सेवा किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म के साधुवर्ग द्वारा नहीं हो सकी है।[1]

राजस्थान में होने वाले इन जैन सन्तों ने स्वयं तो विविध भाषाओं में सैकड़ों-हजारों कृतियों का सृजन किया ही; किन्तु अपने पूर्ववर्ती आचार्यों, साधुओं, कवियों एवं लेखकों की रचनाओं को भी बड़े प्रेम, श्रद्धा एवं उत्साह से संग्रह किया। एक-एक ग्रन्थ की अनेकानेक प्रतियाँ लिखवाकर विभिन्न ग्रन्थ-भण्डारों में विराजमान की और जनता को पढ़ने एवं स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया। राजस्थान के सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थागार उनकी साहित्य-सेवा के ज्वलन्त उदाहरण हैं। ये जैन सन्त संग्रह की दृष्टि से कभी जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद के व्यामोह में नहीं पड़े। उन्हें जहाँ से भी लोकोपकारी साहित्य उपलब्ध हुआ, उसे शास्त्र-भण्डारों में संग्रहीत किया और

---

१ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ : राजस्थानी जैन संतों की साहित्य-साधना, पृ० ७८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान-स्थान पर ग्रन्थागार स्थापित किये। यही कारण है कि आज राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में विविध भाषा के विविध विषयक तीन लाख के लगभग ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।[1] ये ग्रन्थ भण्डार भारतीय वाङ्मय के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। भारतीय वाङ्मय का अधिकांश भाग इन्हीं भण्डारों में सुरक्षित है।

भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों की भाँति साहित्य के उन्नयन तथा विकास में भी राजस्थान ने मूल्यवान योगदान दिया है।[2] जैन बहुलप्रदेश होने के नाते संस्कृत महाकाव्य की समृद्धि में जैन कवियों ने श्लाघ्य प्रयत्न किया है। डॉ० सत्यव्रत ने ठीक ही कहा है, "यह सुखद आश्चर्य है कि जैन साधकों ने अपने दीक्षित जीवन तथा निश्चित दृष्टिकोण की परिधि में बद्ध होते हुए भी साहित्य के व्यापक क्षेत्र में झाँकने का साहस किया, जिसके फलस्वरूप वे साहित्य की विभिन्न विधाओं एवं उसकी विभिन्न शैलियों की रचनाओं से भारती के कोश को समृद्ध बनाने में सफल हुए हैं।"[3]

भारतीय संस्कृत वाङ्मय का अधिकांश भाग जैन-ग्रन्थ भण्डारों में सुरक्षित है। जैसलमेर, नागौर एवं बीकानेर के ग्रन्थागार इस तथ्य के साक्षी हैं। इन ग्रन्थागारों के द्वारा संस्कृत साहित्य के इतिहास की कड़ियाँ प्रकाश में आ सकी हैं। एक विद्वान् के शब्दों में—"संस्कृत के सुकृती रचनाकारों के साथ-साथ हमें महामना जैन मुनियों का भी ऋणी होना चाहिए, जिन्होंने अपने संस्कृतानुराग के कारण कई दुर्लभ एवं विस्मत संस्कृत ग्रन्थों को अपनी ममतामयी क्रोड़ में स्थान देकर उन्हें काल के भयंकर थपेड़ों से और इतिहास की खूंखार तलवार से बचाये रखा।"[4]

इससे कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि राजस्थान में संस्कृत साहित्य के संरक्षण, संवर्द्धन एवं सम्पोषण में जैनाचार्यों, सन्तों एवं विद्वानों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। राजस्थान में जैन कवियों ने संस्कृत भाषा में साहित्य की प्रत्येक विधा में—दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य, चरितकाव्य, पुराण, नाटक, कथा, स्तोत्र, पूजा, भाषाशास्त्र आदि विषयों पर ग्रन्थ रचे।

राजस्थान में १०वीं शताब्दी से पूर्व ही साहित्य-प्रेमी जैन-कवियों की लेखनी से अनेक ग्रन्थ प्रसूत हुए। इस परम्परा में राजस्थान जैन संस्कृत साहित्य के प्रथम निर्माता हरिभद्रसूरि थे। उनका सम्बन्ध चित्तौड़ से था और अस्तित्वकाल वि० की ८-९वीं शताब्दी।[5] हरिभद्रसूरि का प्राकृत एवं संस्कृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। दोनों ही भाषाओं में उनकी विपुल रचनाएँ मिलती हैं। उन्होंने धर्म, योग, दर्शन, न्याय, अनेकान्त, आचार, अहिंसा के साथ ही आगम सूत्रों पर भी विशाल ग्रन्थ लिखे। प्रमुख ग्रन्थों में अनुयोगद्वारसूत्र-टीका, आवश्यकसूत्र-टीका, जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र-टीका, अनेकान्तवादप्रवेश, न्यायविनिश्चय, सर्वज्ञसिद्धि प्रकरण, योगदृष्टि समुच्चय, योगशतक, समरा-इच्चकहा आदि हैं। योग-रचनाओं में जैन योग और पतंजलि की योगपद्धति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अनेकान्त दृष्टि प्राप्त होने पर साम्प्रदायिक अभिनिवेश समाप्त हो जाता है।[6] हरिभद्र सूरि ने प्रथम बार आगम की व्याख्या संस्कृत में लिखी।

हरिभद्र सूरि के पश्चात् 'सिद्धर्षि' की महान् कृति 'उपमितिभवप्रपंचकथा' है, जो वि० सं० ९०२ में लिखी

---

1 Jain Granth Bhandars in Rajasthan : Introduction —Dr. Kastur Chand Kasliwal.

२ श्री के० सी जैन : जैनिज्म इन राजस्थान

३ जैन संस्कृत महाकाव्य—राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० ११७.

४ डॉ० हरिराम आचार्य : राजस्थान में संस्कृत साहित्य की परम्परा, राष्ट्रीय संस्कृत शिक्षा सम्मेलनम् : स्मारिका, १९७८।

५ मुनिश्री नथमल : संस्कृत साहित्य : विकास एवं प्रवृत्तियाँ (राजस्थान), जैन साहित्य, पृ० ५६

६ वही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई। शैली की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठतम महारूपक ग्रन्थ है जो समस्त भारतीय भाषाओं में ही नहीं, अपितु विश्वसाहित्य में प्राचीनतम एवं मौलिक रूपक उपन्यास है।[1] इसमें काल्पनिक पात्रों के माध्यम से धर्म के विराटस्वरूप को रूपायित किया गया है। इसे पढ़ते समय अँग्रेजी की जान बनयन कृत 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का स्मरण हो आता है। जिसमें रूपक की रीति से धर्मवृद्धि और इसमें आने वाली विघ्नबाधाओं की कथा कही गई है।[2]

आठवीं शताब्दी के अन्तिम पाद के 'ऐलाचार्य' भी प्राकृत एवं संस्कृत के विद्वान् व सिद्धान्तशास्त्रों के विशेष ज्ञाता थे। चित्रकूटपुर इनका निवास स्थान था। आचार्य वीरसेन के ये गुरु थे।[3]

१०वीं शताब्दी में आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने समयसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय पर संस्कृत टीका-ग्रन्थ लिखे। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार एवं समयसारकलश इनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं। पं० नाथूराम प्रेमी[4] एवं डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल के अनुसार ये बयाना के पास स्थित ब्रांभपणाड—ब्रह्मवाद में आये। राजस्थान को पर्याप्त समय तक अलंकृत किया। राजस्थान के ग्रंथ भण्डारों में इनकी अनेक रचनाएँ मिलती हैं।[5]

बागड़ प्रदेश में १०वीं शताब्दी में तत्वानुशासन के रचयिता आचार्य रामसेन ने अपने ग्रंथ में अध्यात्म जैसे नीरस, कठोर एवं दुर्बोध विषय को सरल एवं सुबोध बनाया। इसी शताब्दी में आचार्य महासेन ने १४ सर्ग में प्रद्युम्न-चरित को संस्कृत में निबद्ध किया। उनका सम्बन्ध लाड बागड़ से था। चित्तौड़निवासी कवि डड्ढा ने संस्कृत में ही पंच संग्रह की रचना की, जो प्राकृत पंच संग्रह की गाथाओं का अनुवाद है। इनका समय स० १०५५ है।[6]

११-१२वीं शताब्दी में होने वाले आचार्य हेमचन्द्र संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। इनके ग्रन्थों का राजस्थान में काफी प्रचार रहा। दोनों ही सम्प्रदायों के शास्त्र-भण्डारों में इनके ग्रंथ समान रूप से मिलते हैं। संस्कृत वाङ्मय के क्षेत्र में आचार्य हेमचन्द्र का विस्मयकारी योगदान है। प्रमाणमीमांसा उनकी जैनन्याय की अनूठी रचना है। त्रिशष्टि-शलाका पुरुषचरित प्रसिद्ध महाकाव्य है। सिद्धहेमशब्दानुशासन लोकप्रिय व्याकरणग्रंथ है।[7]

सं० १२९२ में मांडलगढ़ निवासी आशाधर ने संस्कृत में न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार, शब्दकोश, धर्मशास्त्र और वैद्यक आदि विषयों पर अनेक ग्रंथों की रचना की। जैनेतर ग्रंथों पर भी उन्होंने टीकाएँ लिखीं। आराधनासार-टीका, प्रमेयरत्नाकर, भरतेश्वराभ्युदय, ज्ञानदीपिका, गजमती विप्रलम्भ, अध्यात्म-रहस्य, अमरकोश एवं काव्यालंकार टीका, जिनसहस्रनाम, सागार एवं अनागार धर्मामृत आदि ग्रंथों के प्रणेता आशाधर संस्कृत भाषा के धुरन्धर विद्वान् थे, जिन पर जैन समाज को गर्व है।[8]

१३वीं शताब्दी में वाग्भट्ट ने मेवाड़ में छन्दोऽनुशासन एवं काव्यानुशासन की रचना की। इसी शती में सोमप्रभाचार्य ने सूक्तिमुक्तावली की रचना की। यह कृति सुभाषित सूक्त होने के साथ-साथ प्रांजल भाषा, प्रसादगुण सम्पन्न पदावली और कलात्मक कृति है। सोमप्रभाचार्य की शृंगारवैराग्यतरंगिणी भी एक महत्त्वपूर्ण कृति है[9]।

अजमेर की गादी के भट्टारक प्रभाचन्द्र ने १३वीं शती में राजस्थान के कई जैन मन्दिरों में मूर्तियों की

---

१. म० विनयसागर महोपाध्याय : संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार, पृ० ६०
२. डा० हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १७४
३. डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल : संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार, पृ० ९५
४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास
५. राष्ट्रीय संस्कृत शिक्षा सम्मेलन, स्मारिका १९७८, पृ० ६७
६. राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० ९७
७. संस्कृत साहित्य के विकास में जैनाचार्यों का योगदान : डा० कासलीवाल
८. जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी
९. राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० ६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिष्ठापना के साथ-साथ पूज्यपाद के समाधितन्त्र और आचार्य गुणभद्र के आत्मानुशासन पर लोकप्रिय संस्कृत टीकाएँ लिखीं। इन्हीं के शिष्य भट्टारक पद्मनन्दि (सं० १३८५) संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। इन पर सरस्वती की असीम कृपा थी। एक बार उन्होंने पाषाण की सरस्वती की मूर्ति को मुख से बुला दिया था।[1] राजस्थान में चित्तौड़, मेवाड़, बूंदी, नैणवाँ, टोंक, झालावाड़ के साथ गुजरात इनकी साहित्य-साधना एवं धर्म प्रचार के केन्द्र रहे। भट्टारक सकलकीर्ति ने इन्हीं से नैणवाँ में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। इनकी प्रमुख कृतियों में श्रावकाचार, द्वादशव्रतोद्यापन, पार्श्वनाथस्तोत्र, देवशास्त्रगुरुपूजा हैं।[2]

वि० की १४वीं शताब्दी में जिनप्रभसूरि ने द्व्याश्रय श्रेणिक काव्य लिखा, जिसमें व्याकरण की वृत्ति एवं श्रेणिक का जीवन चरित्र दोनों साथ चलते हैं।

मुहम्मद तुगलक के प्रतिबोधक एवं धर्मगुरु जिनप्रभसूरि ने वि० सं० १३८९ में विविधतीर्थकल्प नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। तीर्थयात्रा में जो देखा, उसका सजीव वर्णन हुआ है। इसमें भक्ति, इतिहास और चरित तीनों एक साथ मिलते हैं।[3]

१५वीं शताब्दी में राजस्थान में बागड़ प्रान्त में भट्टारक सकलकीर्ति का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सकलकीर्ति संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। उन्होंने पुराण, न्याय, काव्य, आदि पर २८ से भी अधिक ग्रन्थ लिखे।[4] मूलाचारप्रदीप, आदिपुराण, उत्तरपुराण, शान्तिनाथचरित्र, यशोधरचरित्र, सुकुमालचरित्र, सुदर्शनचरित्र, पार्श्वनाथ-चरित्र, व्रतकथाकोष, सुभाषितावली, जम्बूस्वामीचरित्र, सिद्धान्तसारदीपक आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं।

राजस्थान में जैन संस्कृत साहित्य की संरचना में ब्रह्म जिनदास का योगदान भी कम नहीं है। गुजरात के अणहिलपुरपट्टण में जन्म लेने के बाद मेवाड़ में बागड़ प्रान्त में भट्टारक सकलकीर्ति के सान्निध्य में सं० १४८० से १५२० तक साहित्याराधन में रत रहने वाले ब्रह्म जिनदास ने हिन्दी के साथ संस्कृत भाषा में भी काव्य रचना की, जिनमें पद्मपुराण, जम्बूस्वामीचरित्र, हरिवंशपुराण मुख्य हैं।[5]

भट्टारक ज्ञानभूषण की तत्त्वज्ञानतरंगिणी (रचनाकाल सं० १५६०) आत्मसम्बोधन काव्य है। ये सागवाड़ा गादी के भट्टारक थे।

षट्भाषा चक्रवर्ती शुभचन्द्र (सं० १५७३) विविध विद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम एवं परमागम) के ज्ञाता थे।[6] इनकी २४ संस्कृत रचनाओं में चन्द्रप्रभचरित्र, करकण्डुचरित्र, कार्तिकेयानुप्रेक्षा-टीका, जीवन्धरचरित्र, पाण्डवपुराण, श्रेणिकचरित्र विशेष प्रसिद्ध हैं।

आचार्य सोमकीर्ति ने १५वीं शताब्दी में संस्कृत में सप्तव्यसनकथा, प्रद्युम्नचरित्र एवं यशोधरचरित्र रचनाएँ लिखीं। इसी शताब्दी में जिनदत्तसूरि ने जैसलमेर में ज्ञानभण्डार की स्थापना की। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे।[7]

सं० १५४४ में कमलसंयमोपाध्याय ने उत्तराध्ययन पर संस्कृत टीका लिखी। ब्रह्म कामराज ने सं० १५६० में जयपुराण लिखा।

---

१ संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार : डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल पृ० १०३
२ भट्टारक सम्प्रदाय : श्री वी० पी० जोहरापुरकर
३ राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० ५९।
४ राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ९
५ ब्रह्म जिनदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डा० प्रेमचन्द्र रांवका
६ राजस्थान के जैन संत, पृ० ९४
७ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ७६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६वीं शताब्दी में ब्रह्म रावमल्ल ने भक्तामरस्तोत्र की वृत्ति लिखी। १७वीं शताब्दी के सर्वतोमुखी और सर्वश्रेष्ठ विद्वान् महोपाध्याय समयसुन्दर ने सं० १६४९ में काश्मीर विजय के समय सम्राट अकबर के सम्मुख 'राजानो ददते सौख्यम्' इन आठ अक्षरों के आठ लाख अर्थ कर अष्टलक्षी ग्रन्थ रचा। सं० १६५६ में विराटनगर में भट्टारक सोमसेन ने पद्मपुराण की रचना की। १७वीं शताब्दी में सन्त हर्षकीर्ति सूरि ने आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ योगचिन्तामणि लिखा। १८वीं शताब्दी में उपाध्याय मेघविजय ने सप्तनिधान काव्य का निर्माण किया, जिसमें ऋषभदेव, शान्तिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर इन पाँच तीर्थंकरों तथा राम और कृष्ण के चरित्र निबद्ध हुए।

सं० १७०५ में भट्टारक श्रीभूषण का पूजासाहित्य, भट्टारक धर्मचन्द (सं० १७२६) का गौतमस्वामीचरित, पण्डित जिनदास का होली रेणुकाचरित्र, विराटनगर के पं० राजमल्ल का जम्बूस्वामीचरित्र, वादिराज का वाग्भट्टालंकार, भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की समयसार टीका, भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की अष्टाह्निका कथा, प्रताप काव्य। आचार्य ज्ञानसागर के वीरोदय, जयोदय एवं दयोदय महाकाव्य, पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ के जैनदर्शनसार, सर्वार्थसिद्धिसार; पं० मूलचन्द शास्त्री का वचनदूतम्, मुनि चौथमलजी का भिक्षु शब्दानुशासन, आचार्यश्री तुलसी का जैनसिद्धान्तदीपिका, मनोऽनुशासनम्, मुनिश्री नथमलजी की सम्बोधि, चन्दनमुनि का अभिनिष्क्रमणम्, प्रभवप्रबोधकाव्यम्, आदि संस्कृत काव्य राजस्थान के हैं। सम्प्रति आचार्य विद्यासागर संस्कृत के युवा आचार्य हैं। इनका श्रमणसूक्तम् जैनगीताकाव्य है।

इस प्रकार राजस्थान में संस्कृत की सरिता निरन्तर प्रवहमान रही जहाँ जैन मुनियों, आचार्यों, विद्वानों ने संस्कृत साहित्य के संवर्द्धन में योग दिया। वह परम्परा आज भी गतिशील है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org